

समयसार, आस्रव अधिकार, १७२ के भावार्थ के नीचे है। विवक्षा का विचित्रता का लिखा है न? यह कलश-टीकाकार ने नहीं लिखा। यह हेमराजजी ने लिखा है।

परवृत्ति (परपरिणति) दो प्रकार की है.. आत्मा में परिणति / पर्याय होती है, वह दो प्रकार की है। एक **अश्रद्धारूप..** और एक **अस्थिरतारूप**। एक मिथ्यात्वरूप और एक अस्थिरतारूप। आत्मा में द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है, अब परिणति, उसकी जो पर्याय है, उस पर्याय में दो प्रकार हैं। अनादि से अश्रद्धारूप, मिथ्यात्वरूप और अस्थिरतारूप।

ज्ञानी ने अश्रद्धारूप परवृत्ति को छोड़ दिया है.. धर्मी ने अश्रद्धारूप अर्थात् मिथ्यात्वरूप (अर्थात्) राग, वह मेरा है और राग से मुझे हित है, यह बुद्धि ज्ञानी ने छोड़ दी है। आहाहा! अज्ञानी को राग, वह हितकर है और राग मेरी चीज़-स्वरूप है—ऐसा उसे अश्रद्धान का-मिथ्यात्व का परिणमन है और अस्थिरता का भी है। ज्ञानी-धर्मी को अश्रद्धा अर्थात् मिथ्यात्वरूप परवृत्ति छोड़ी है। पर का कर सकता हूँ, यह बात धर्मी ने छोड़ दी है। (पर का कर सकता हूँ), यह श्रद्धा मिथ्यात्व है। पर का कुछ कर सकता हूँ या दान, दान, व्रत, परिणाम धर्म है या धर्म का कारण है, ऐसी जो मिथ्याश्रद्धा, उसे धर्मी ने छोड़ दिया है। आहाहा!

अस्थिरतारूप परवृत्ति को जीतने के लिए.. अब धर्मी को अस्थिरता है। राग-द्वेष की वासना ऐसी उत्पन्न होती है। आहाहा! उसे जीतने के लिए निज शक्ति को

बारम्बार स्पर्श करता है.. उसे राग-द्वेष और अस्थिरता होती है, परन्तु उसे जीतने के लिए आत्मा के अनुभव को बारम्बार स्पर्श करता है। निर्विकल्प आनन्द की दशा को बारम्बार स्पर्श करता है। आहाहा! अर्थात् परिणति को स्वरूप के प्रति बारम्बार उन्मुख किया करता है। अपनी जो परिणति-पर्याय है, वह अस्थिरता में जाती है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना में जाती है, तथापि अन्तर में उन्मुख करने का प्रयत्न किया करता है। स्वरूपसन्मुख झुकाने का प्रयत्न करता है।

इस प्रकार सकल परवृत्ति को उखाड़ करके.. इस प्रकार सकल विकार की (अर्थात्) अश्रद्धारूप और अस्थिरतारूप, दोनों परिणति को उखाड़कर। केवलज्ञान प्रगट करता है। लो! यह तो पहले आया था न, कि समकित्ती निरास्रव है, उसे बन्धन नहीं है। वह अश्रद्धा के उत्पादरूपी बन्धन नहीं है। मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी का आस्रव नहीं है। अस्थिरतारूप है, परन्तु दृष्टि का बहुत जोर दिया हो तो उसे वह अस्थिरता उसकी चीज ही नहीं है। वह तो ज्ञाता के ज्ञेय में जाती है, ऐसा कहकर समकित्ती को आस्रव और बन्ध नहीं है, किन्तु वापस विचार करने पर उसे आस्रव और बन्ध अभी है और थोड़ा स्थिति-रस कर्म में बन्ध भी (पड़ता) है परन्तु उसे गौण करके दृष्टि के जोर से बात की हो परन्तु एकान्त मान लेना कि उसे बिल्कुल अस्थिरता के आस्रव, रागादि हैं ही नहीं और बन्धन है ही नहीं, ऐसा नहीं है। यह वक्ता की अपेक्षा का कथन है। किस अपेक्षा से कहना चाहते हैं, ऐसा इसे जानना चाहिए। आहाहा!

‘बुद्धिपूर्वक’ और ‘अबुद्धिपूर्वक’ का अर्थ इस प्रकार :- जो रागादिपरिणाम इच्छासहित होते हैं सो बुद्धिपूर्वक हैं.. अर्थात्? जो कुछ दया, दान, पुण्य, पाप के भाव रुचिपूर्वक होते हैं, इच्छापूर्वक होते हैं, हितबुद्धि से होते हैं, उन्हें बुद्धिपूर्वक है—ऐसा कहते हैं। और जो इच्छारहित - परनिमित्त की बलवत्ता से.. है तो अपनी कमजोरी परन्तु निमित्त की अपेक्षा से बात की है। परनिमित्त की बलवत्ता से.. देखो! इसमें लोग कहते हैं कि देखा! परनिमित्त की बलजोरी से विकार होता है। वह तो किस अपेक्षा से कहते हैं? अपने को राग की रुचि है नहीं, राग दुःखरूप भासित होता है परन्तु अपनी पर्याय में कमजोरी के कारण विकार होता है, उसे निमित्त की बलजोरी से होता है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा!

एक ओर ऐसा कहना कि प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय को प्राप्त करता है, पहुँचता है। उसमें पर का कोई अधिकार नहीं है। आहाहा! और उसकी पर्याय उसके द्रव्य-गुण से होती है, पर से नहीं होती और उसकी पर्याय उसके स्व अवसर में जो होनेवाली हो, वह होती है। आहाहा! बहुत प्रकार हैं। क्या अपेक्षा है, (वह समझना चाहिए)। आया था न? **विवक्षा की विचित्रता**। इस टीका में है या नहीं? उस कलश-टीका में नहीं। हेमराजजी ने डाला है। वक्ता को किस अपेक्षा से कहना है, वह कथन की विचित्रता है। कथन की (विचित्रता है)। वस्तुस्वरूप तो जैसा है, वैसा है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए बन्धन नहीं है, ऐसा बहुत जोर दिया हो, इसलिए कोई ऐसा ही मान लेना कि उसे जरा भी बन्धन नहीं है, तब तो केवलज्ञान हो गया, तो यथाख्यातचारित्र हो गया हो। आहाहा! परन्तु दृष्टि के ज्ञान के जोर में जो रागादि अस्थिरता के आते हैं, उनका वह ज्ञान करता है, ज्ञान का ज्ञेय है। दृष्टि में हेय है, ज्ञान में ज्ञेय है, चारित्र की अपेक्षा से वह रागादि जहर है। आहाहा! ऐसा जानने पर भी आये बिना नहीं रहता, कहते हैं परन्तु दृष्टि के जोर की अपेक्षा से ऐसा कहा कि उसके नहीं हैं, परन्तु एकान्त से नहीं, ऐसा नहीं मान लेना। आहाहा!

दसवें गुणस्थान तक राग-लोभ राग है। छह कर्म बाँधते हैं और यहाँ चौथे गुणस्थान में आस्रव और बन्ध है ही नहीं, (ऐसा कहा तो वह) किस अपेक्षा से कहा? वह तो दृष्टि के जोर में और ज्ञान में रागादि आवें, वह ज्ञान और दृष्टि में अपने नहीं मानता, उन्हें दुःखरूप और हेय जानता है। यह आ गया है न ऊपर? **ज्ञानी ने समस्त राग को हेय जाना है। भावार्थ : समस्त राग को हेय जाना है।** चाहे तो भगवान की भक्ति का, विनय का (राग हो), वाँचन का हो, परन्तु उस राग को हेय जाना है। आहाहा! भगवान आत्मा परमात्म चिदानन्दस्वरूप है, वह एक ही ज्ञानी को उपादेय, आदरणीय है। रागमात्र (हेय है)। राग का कण भी रह गया हो, एक लोभ, इच्छा (रह गया हो), दसवें में द्वेष गया, दसवें गुणस्थान में द्वेष नहीं है। राग का अंश लोभ रहा, तो भी छह कर्म बाँधता है। समझ में आया? और यहाँ ऐसा कहना कि समकित हुआ तो राग भी नहीं, आस्रव भी नहीं, बन्ध भी नहीं। वह तो एक पूर्ण दृष्टि और उसके ज्ञान के जोर को बतलाने के लिए यह बात की है। अस्थिरता का राग आवे, वह अल्प आता है और उसे कर्म बन्धन भी स्थिति और रस

अल्प पड़ते हैं, ऐसी उसकी गिनती न गिनकर, गौण करके उसे बन्धन और आस्रव नहीं है, ऐसा कहा है। किन्तु जब मुख्यरूप से दोनों बात बतलानी हो (तो) निर्मल धारा है, उतना उसे आस्रव और बन्ध नहीं है। यह गाथा आ गयी है। और जब तक राग की पूर्ण निवृत्ति नहीं है, वहाँ तक रागधारा और ज्ञानधारा दोनों होती है। आहाहा!

राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, वह भेदज्ञान (हुआ), तत्पश्चात् भेदज्ञान करना नहीं पड़ता। वह राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान तथा ज्ञान और श्रद्धा की धारा निरन्तर होती है। आहाहा! और जितना कमजोरी के कारण रागादि होते हैं, वह रागधारा-कर्मधारा भी साथ में होती है। जितने अंश में रागधारा, उतने अंश में बन्ध है; जितने अंश में ज्ञानधारा, उतने अंश में अबन्ध है। आहाहा!

यहाँ अब कहते हैं रागादिपरिणाम इच्छारहित – परनिमित्त की बलवत्ता से होते हैं, सो अबुद्धिपूर्वक हैं। ज्ञानी के जो रागादिपरिणाम होते हैं, वे सभी अबुद्धिपूर्वक ही हैं;.. रुचिपूर्वक नहीं, ऐसा। करनेयोग्य है, कर्तव्य है—ऐसा नहीं, तो भी एक अपेक्षा से ज्ञाननय की अपेक्षा से उन्हें ऐसा भी कहा जाता है कि राग का कर्ता भी है, भोक्ता भी है। आहाहा! सैंतालीस नय, प्रवचनसार। ज्ञानप्रधान कथन है न! राग का अंश है, परिणमे वह कर्ता, (ऐसा कहा)। वह करनेयोग्य है, इसलिए (कर्ता)—ऐसा नहीं है परन्तु परिणमता है, इस अपेक्षा से कर्ता तथा परिणमे और उसे भोगता है, उसे वह वेदन में है, ज्ञानी को राग का, दुःख का वेदन है; न हो तो पूर्ण आनन्द का वेदन होना चाहिए और पूर्ण आनन्द का वेदन नहीं है, वहाँ थोड़ा आनन्द और थोड़ा दुःख, दोनों का वेदन साथ में है। अरे.. अरे..! इतनी सब बातें अब।

एकान्त खींच जाना कि बस! ज्ञानी को कुछ है ही नहीं। दुःख भी नहीं, आस्रव भी नहीं बन्ध भी नहीं, (ऐसा नहीं होता)। एक गाथा में, कलश में जोर बहुत दिया है। ज्ञानी को कुछ है ही नहीं। किस अपेक्षा से? भाई! ज्ञानी को भोग निर्जरा का हेतु कहा है। भोग निर्जरा का हेतु होगा? ज्ञानी या अज्ञानी चाहे जो हो। भोग में तो राग है। राग तो बन्धन का कारण ज्ञानी को भी होता है परन्तु दृष्टि के जोर में, राग की रुचि नहीं, राग में सुखबुद्धि नहीं, राग में सुखबुद्धि नहीं; इसलिए उसे भोग खिर जाता है, हितबुद्धि नहीं, इस अपेक्षा से

कथन किया है। आहाहा! बाकी तो अंश-अंशराग जहाँ तक है, वहाँ तक अस्थिरता का दोष है, वह आस्रव है और उस प्रमाण बन्धन भी है। आहाहा!

ज्ञानी के जो रागादिपरिणाम होते हैं, वे सभी अबुद्धिपूर्वक ही हैं; सविकल्पदशा में होनेवाले रागादि परिणाम ज्ञानी को ज्ञात तो हैं.. अर्थात् क्या? कि राग से भिन्न, ऐसा भेदज्ञान तो है, परन्तु विकल्पदशा आयी, राग दशा में आया। चाहे तो दया, दानादि या हिंसा, झूठ, विषयादि, उस सविकल्पदशा में होनेवाले रागादि परिणाम.. राग-द्वेषादि परिणाम ज्ञानी के ज्ञान में हैं, धर्मी को जानने में आते हैं। मेरी कमजोरी है, पर्याय में भावकर्म का जोर है।

उसमें तो ऐसा आया है न! 'कम्मोबलियो, कब्बा जीवोबलियो।' वह कर्म तो जड़ है, उनकी बात नहीं है। कदाचित् भावकर्म का बल विशेष बढ़ गया हो अथवा आत्मा के ज्ञान-आनन्द का बल बढ़ गया हो, ऐसा। 'कम्मोबलियो' (कहा), उसमें कर्म बल होकर आत्मा की कोई पर्याय करे, तब तो फिर ऐसा तो बहुत बार कहा गया कि अपनी-अपनी विकारी या अविकारी पर्याय को वह द्रव्य प्राप्त होता है, पहुँचता है, प्राप्त करता है। आहाहा! उसमें दूसरा द्रव्य उसे प्राप्त कराता है, ऐसा है नहीं। बहुत गड़बड़, गड़बड़ अभी तो (चलती है)। एक बात जहाँ करे, वहाँ दूसरे में भूले और दूसरी करे, वहाँ (तीसरी में भूले)। आहाहा! धर्मी को राग आता है, इसलिए वह हितबुद्धि से आता है, ऐसा नहीं है। हेयबुद्धि से आता है। आहाहा! अन्दर में स्थिरता नहीं (होती)... आहाहा! इसलिए उसे राग और द्वेष ऐसे परिणाम आते हैं परन्तु उनमें हितबुद्धि और रुचिबुद्धि नहीं है। ज्ञानी को ज्ञात तो हैं, तथापि वे अबुद्धिपूर्वक हैं, क्योंकि वे बिना ही इच्छा के होते हैं। इच्छा बिना अर्थात्? - कि रुचि की इच्छा नहीं है, करनेयोग्य है, दृष्टि में उसे करनेयोग्य है—ऐसा भाव नहीं है। आहाहा! बाकी तो इच्छा हुई है, वह इच्छा हुई है। आहाहा! परन्तु यह मुझे कर्तव्य है और मुझे करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! परमात्मा आत्मा प्रभु, उसका जहाँ अन्तरज्ञान और आनन्द और श्रद्धा का परिणमन हुआ, उसमें फिर उसे राग का भाव आता है परन्तु सुखबुद्धि नहीं है, हितबुद्धि नहीं है। यह मुझे ठीक आया, ऐसा नहीं है। आहाहा! तथापि वे अबुद्धिपूर्वक हैं,.. अर्थात् रुचिपूर्वक नहीं है, ऐसा। बिना इच्छा के होते हैं।

अब दूसरा अर्थ राजमलजी ने इस टीका-कलश टीका में किया है। (पण्डित राजमलजी ने इस कलश की टीका करते हुए 'बुद्धिपूर्वक' और 'अबुद्धिपूर्वक' का अर्थ इस प्रकार किया है:—जो रागादिपरिणाम मन के द्वारा,..) मन द्वारा अर्थात् मन के सम्बन्ध द्वारा राग-द्वेष विकारादि हो, (बाह्य विषयों का आलम्बन लेकर प्रवर्तते हैं,..) मूल तो रागादि बाह्य विषयों के अवलम्बन से प्रवर्तते हैं। जो राग-द्वेष होते हैं, उस दशा की दिशा परसन्मुख ही है। क्या कहा, समझ में आया? जितने राग और द्वेष, दया, दानादि परिणाम (होते हैं), उस दशा की दिशा परसन्मुख है। वीतराग परिणति की दशा की दिशा आत्मा के सन्मुख है। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं। क्योंकि वीतरागता — धर्मदशा वह तो द्रव्य के आश्रय से होती है।

वे लड़के तूफान (ऊधम) करते हैं। यह उन्हें समझ में नहीं आवे तो क्या करना? बाहर बाथमबाथ भिड़ते थे। आहाहा!

राजमलजी ने ऐसी अपेक्षा से बात की है कि जो रागादि, राग-द्वेष, विषय-वासना आदि मन द्वारा हो और बाह्य विषयों को अवलम्बन कर हो। वैसे तो राग होता है, वह बाह्य विषयों को ही अवलम्ब कर होता है परन्तु यहाँ उसकी जरा दूसरी भाषा की है। (प्रवर्तते हैं,.. बाह्य विषयों का आलम्बन लेकर प्रवर्तते हैं,..) राग-द्वेष होते हैं, वे बाह्य विषयों को (अवलम्ब कर) प्रवर्तते हैं। मन द्वारा बाह्य विषयों को अवलम्बन करते हैं। (और जो प्रवर्तते हुए जीव को निज को ज्ञात होते हैं..) आहाहा! जीव को जानने में भी आवे कि यह राग हुआ, अशुभराग (हुआ), ऐसा जानने में आवे। (तथा दूसरों को भी अनुमान से ज्ञात होते हैं..) कि इसे अभी अशुभराग है या शुभ (राग है)। बाहर की भगवान की (पूजा, भक्ति की) प्रवृत्ति में हो, तब शुभ है और दूसरे में हो तो अशुभ है, ऐसा अनुमान से जानने में (आता है)। (वे परिणाम बुद्धिपूर्वक हैं;..) ऐसा कहा है। उन परिणामों को बुद्धिपूर्वक कहा है। क्या कहा?

एक तो विकार होता है, वह मन द्वारा बाह्य विषयों को अवलम्बनकर प्रवर्तते हुए अपने को ज्ञात होता है, दूसरे को अनुमान से भी ज्ञात होता है। यह चार बोल लिये हैं। समझ में आया? यह तो धीर की बात है, बापू! आहाहा! राजमलजी ने ऐसा अर्थ लिया (कि) राग होता है, वह मन द्वारा (होता है)। यद्यपि राग होता है, वह मन द्वारा ही होता है, परन्तु

यहाँ एक बात दूसरी निकाल डालेंगे। मोह के उदय से होता है, उसे मन द्वारा नहीं, ऐसी यह बात करेंगे। नहीं तो जितना राग-द्वेष होता है, वह मन के सम्बन्ध से होता है या पर का-विषयों का सम्बन्ध है। मन के सम्बन्ध बिना सीधे राग नहीं होता। मोहकर्म का उदय आवे और स्वयं जुड़े तो उसमें मन का सम्बन्ध है। आहाहा!

यहाँ राजमलजी एक दूसरी अपेक्षा लेंगे। कलश-टीका है न! जो राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव मन द्वारा होते हैं, बाह्य विषयों को अवलम्बकर होते हैं, दो (बातें हुई), (वे) प्रवर्तते हुए अपने को ज्ञात होते हैं, यह (तीसरी बात), दूसरे को अनुमान से भी ज्ञात होते हैं। (वे परिणाम बुद्धिपूर्वक हैं; और जो रागादि परिणाम इन्द्रिय-मन के व्यापार के अतिरिक्त..) अपेक्षा से लिया है। नहीं तो राग होता है, वह मन के अवलम्बन बिना होता ही नहीं, परन्तु बुद्धिपूर्वक मन का अवलम्बन नहीं है, ऐसा (कहना है)। बुद्धिपूर्वक मन का अवलम्बन नहीं है, इस अपेक्षा से कहा है। नहीं तो राग होता है, वह किसी प्रकार से मन के अवलम्बन बिना हो सकता ही नहीं। परद्रव्य के अवलम्बन बिना राग होता ही नहीं। अकेला मोह का उदय आकर राग हो, ऐसा नहीं है, परन्तु यहाँ दूसरे प्रकार से सिद्ध करना है।

वे परिणाम इन्द्रिय और मन के व्यापार के अतिरिक्त। अपना व्यापार मैं करूँ, ऐसा नहीं। मन में जुड़कर राग करूँ, ऐसा विशेष नहीं है। इसलिए उसे (मात्र मोहोदय के निमित्त से होते हैं..) समझ में आया इसमें कुछ? इस प्रकार लिया है। मन द्वारा होते हैं, मन द्वारा नहीं होते। मात्र मोह के उदय से होते हैं, ऐसी एक-दो शैली ली है। बाकी तो जो राग होता है, वह परद्रव्य के सम्बन्ध बिना, निमित्त के सम्बन्ध बिना होता ही नहीं। मोह का उदय आया परन्तु मन सम्बन्ध में जुड़े, तब ही उसे राग होता है। आहाहा! परन्तु यहाँ अपेक्षा से कथन है। ऐसा सब जानना। आहाहा!

(इन्द्रिय-मन के व्यापार के अतिरिक्त..) यह तो जब पहले पढ़ा, तब ख्याल था कि टीका इतनी अधिक कैसे करते हैं। कलश में मन द्वारा अकेले मोह से (होते हैं), वह तो एक अपेक्षा से ख्याल में नहीं हैं, इसलिए उसे मोह द्वारा हुआ, ऐसा कहने में आता है। ज्ञात नहीं होता, ऐसा आया था न? उसमें आया था न? कि जीव (को) ज्ञात हो, बाह्य विषयों का अवलम्बन है, मन द्वारा (होता है वह) दूसरे को अनुमान से ज्ञात होता है। ऐसा इसमें नहीं, इसलिए मोह द्वारा (होता है ऐसा) कहा। क्या कहा? इसे ख्याल में नहीं आता,

परन्तु है तो मन का सम्बन्ध। ख्याल में नहीं आता, इस अपेक्षा से मोह के उदय से राग और द्वेष हुआ, ऐसा कहने में आया। मन द्वारा बाह्य विषयों को अवलम्बकर स्वयं को जानने में आवे तथा दूसरे को अनुमान से भी ज्ञात हो कि यह मुझे अभी राग (होता) है। आहाहा!

समकिति दुकान में व्यापार करने बैठा हो, तब सब राग ज्ञात होता है या नहीं? स्वयं को ज्ञात होता है या नहीं? मन द्वारा हुआ है या नहीं? पर का अवलम्बन है या नहीं? अपने को ज्ञात होता है या नहीं? दूसरे भी अनुमान करे कि यहाँ बैठा (है, इतना) राग है। समझ में आया? आहाहा! और उसके ख्याल में न आवे तथा पर का, इन्द्रियों के विषयों का सम्बन्ध नहीं है और दूसरे भी अनुमान नहीं कर सकते, इस अपेक्षा से उसे मन बिना, मोह के उदय से हुआ—ऐसा कहने में आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : मोह के उदय की मुख्यता से।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्यता दी इतना। बाकी है तो अन्दर मन द्वारा अवश्य। परन्तु अन्दर सूक्ष्म, सूक्ष्मरूप से ज्ञात नहीं होता और दूसरे भी उसे अनुमान (न) कर सके कि यह राग में है। इस प्रकार राग होने में मन से नहीं परन्तु मोह के उदय से होता है, ऐसा यहाँ अबुद्धिपूर्वक कहने में आया है। अरे! अब ऐसा यह सब कहाँ याद रहे? कितना याद (रखना)? प्रतिदिन फेरफार। सवेरे कुछ, दोपहर में कुछ। बापू! मार्ग तो ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा! जिस अपेक्षा से कहा है, उस अपेक्षा से इसे जानना चाहिए। भगवान का मार्ग स्याद्वाद है। किस अपेक्षा से कहा, उस अपेक्षा से जानना चाहिए। स्याद्वाद करके ऐसा नहीं (कहना) कि निमित्त से भी होता है और आत्मा से भी होता है; व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है।—ऐसा स्याद्वाद नहीं है, किन्तु निमित्त भी है, उपादान भी है, व्यवहार भी है, निश्चय भी है। आहाहा!

(इन्द्रिय-मन के व्यापार के अतिरिक्त मात्र मोहोदय के निमित्त से होते हैं तथा जीव को ज्ञात नहीं होते..) देखा? सूक्ष्म है न, यह अपेक्षा ली है। उसमें ज्ञात होते हैं और यहाँ ज्ञात नहीं होते, इतनी अपेक्षा ली है। (वे अबुद्धिपूर्वक हैं।) यह बराबर कहा है। मन द्वारा अर्थात् ऐसा करूँ, ऐसा करूँ - ऐसे इतना जुड़ान, इतना स्थूल उपयोग नहीं है। सूक्ष्मरूप से है, उसे मन द्वारा नहीं, ऐसा कहा और मोह के उदय से होते हैं, तथा अपने को ज्ञात नहीं होते; इसलिए उन्हें अबुद्धिपूर्वक कहा गया है।

एक में बुद्धिपूर्वक अर्थात् रुचिपूर्वक (अर्थ किया), अबुद्धिपूर्वक अर्थात् रुचि बिना (ऐसा अर्थ किया)। यहाँ दूसरी चीज (सिद्ध करते हैं)। यहाँ बुद्धिपूर्वक मन द्वारा ख्याल में आवे, दूसरे जानें, उसका नाम बुद्धिपूर्वक और अपने को ख्याल में न आवे, भले है मन द्वारा परन्तु मन द्वारा होते हैं, ऐसा ख्याल में न आवे और मोह के उदय से होते हैं, उन्हें अबुद्धिपूर्वक कहने में आता है। ऐसा है। यह तो जिस दिन पहले पढ़ा, तब से यह ख्याल में है कि यह मन द्वारा निषेध करते हैं। वह इस अपेक्षा से, कहा न? कि जीव को ज्ञात नहीं होते, इस अपेक्षा से। आहाहा! ऐसा धर्म समझने के लिए... ऐसा सब रुकना पड़ता होगा?

धर्म चीज़ बहुत सूक्ष्म है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ का जो ज्ञान तीन काल-तीन लोक का, उसका जो स्वभाव और उस स्वभाव को स्वयं अपने में प्राप्त करना और स्वभाव को प्राप्त करने पर भी राग-द्वेष का रहना... आहाहा! स्वभाव में राग-द्वेष हैं नहीं। स्वभाव की दृष्टि होने पर, अनुभव होने पर भी स्वभाव में राग-द्वेष नहीं हैं। दृष्टि में राग-द्वेष नहीं हैं, दृष्टि का विषय तो स्वभाव त्रिकाली है, तो भी उसे भी सूक्ष्मरूप से मन द्वारा ज्ञात नहीं होता, इस अपेक्षा से मन द्वारा नहीं और मोह के उदय से राग हुआ, और स्वयं को जानने में आता नहीं, उसे अबुद्धिपूर्वक कहने में आता है। कहो, चिमनभाई! इसमें कितना इसमें (याद रखना)? आहाहा!

मुमुक्षु : दुकान में धन्धा करे तो सब याद रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ सब प्रकार (याद रखता है)। दुकान में हमारे आनन्दजी था। वह कितनी चीज़ें और कितना ध्यान रखता था! अपने को बहुत ऐसा कुछ नहीं। दुकान में बैठते... और माल लेकर आवे, तब हाथ में छतरी लटकती ऐसे... रेल में से उतरे तो आवे। तीन-चार दिन में, तीन-चार दिन में मुम्बई माल लेने जाना पड़े। मासिक पास लिया हुआ था। यह तो तब (संवत्) १९६४-६५-६६ की बातें हैं। १९६३ में कुँवरजी की दुकान की थी। हमारे बड़े भाई को साथ में लिया था। आहाहा! वह सब बात जाने, एक-एक! मुम्बई में इस चीज़ का यह भाव है, किस भाव में यह चीज़ हम लाये, उसमें इतनी बिक गयी है और इतनी बाकी है और (यह चीज़) नये भाव में ऐसे भाव की आनेवाली है। ऐई..! हमारे आनन्दजी था, आनन्दजी! अन्त में पैर टूट गया था, इसलिए चल नहीं

सकता था। पति-पत्नी दो ही थे, लाखों रुपये थे। पश्चात् दुकान छोड़ दी थी तो भी दो घण्टे दुकान में आवे।

मुमुक्षु : घर में क्या करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह घर नहीं अन्दर ? आहाहा ! निजघर में जाए तो वहाँ महाप्रभु विराजता है। आहाहा ! ऐसा का ऐसा मर गया। अन्त में कहे कि अरे रे ! मुझे किसी ने कहा नहीं, क्योंकि अकेला। पति-पत्नी दो ही थे और दुकान में पाप बहुत किये। और मैंने उसे कहा परन्तु वह मेरा कुछ (माना नहीं)। यह तो महाराज त्यागी है तो कहे (ऐसा ले लेवे) परन्तु मुझे किसी कुटुम्बी ने कहा नहीं कि छोड़ दे। परन्तु तू किसलिए (करता है) ? मजदूरी करके बैठा हो तो मजदूरी कर न यहाँ। आहाहा ! अरे रे ! अब मैं जाता हूँ। किसी ने मुझे छोड़ने को कहा नहीं। मैंने छोड़ा नहीं, मुझे कुछ नहीं था तो भी। एक ही स्त्री, तो भी (छोड़ा नहीं)। लाखों रुपये थे। फिर तो दोनों मर गये। बहू भी मर गयी। आहाहा ! यह संसार का नाटक ! आहाहा !

दामनगर में एक खुशालभाई थे। अपने यहाँ जगुभाई रहते थे, जगुभाई ! बड़े जगुभाई ! गढडा, वे गुजर गये। उनके पिता थे। लौकिक में चतुर कहलाते थे। एक आँख थी और एक आँख नहीं थी। गाँव में जहाँ विवाद हो, ऐसा हो (वहाँ) जाए तो समाधान कर डाले। बहुत समय ऐसा सब किया। वह मरने के समय, भाई ! आहाहा ! इससे श्वास ली जाए नहीं, उलझन का पार नहीं होता। देखने आवे, सेठ देखने आवे। दामोदर सेठ देखने आवे। गाँव में कर्ता-हर्ता वह था न ! देखने आवे। फिर रोवे। अरे रे ! मैंने मेरा कुछ नहीं किया। मैंने पर का करने में रुककर मैंने मेरा बिगाड़ दिया। अरे ! अब समय रहा नहीं। ऐसे अन्त में बोलता था। संसार का चतुर कहलाता था। खुशालभाई ! खुशाल प्रेमचन्द ! उसके पिता का नाम। आहाहा ! वह भाई रोते-रोते देह छूट गयी। मैंने मेरा कुछ नहीं किया। अरे रे ! ऐसे देह पूरी हो जाएगी। लोग ऐसे के ऐसे अभिमान में रहा करते हैं। अभी बाद में करूँगा, बाद में करूँगा, बाद में करूँगा। इतना करूँगा, इतना बाद में करूँगा, इतना बाद में करूँगा। वह बाद में पहला आवे नहीं और बाद का बाद में रहा करे, आहाहा ! अरे रे ! ऐसा अवसर कब आवे ? भाई ! अनन्त-अनन्त काल का, बापू ! यह इसने विचार नहीं किया। आहाहा !

अनन्त नरक के, निगोद के भव करके, बापू! तू यहाँ आया है। आहाहा! अब तो यह नरक और निगोद के भव, बापू! कैसे सहन किये हैं, यह बात कठिन है। आहाहा! यह भव न हो, वह करना है, भाई! आहाहा! बाकी तो सब चीज़ ठीक, दुनिया पैसा सब हुए और इज्जत हुई और लड़के पाँच-सात-दस हुए और सब कमाऊ हुए और अमुक हुए... इसमें धूल में कुछ (नहीं है)। आहाहा! मरकर दुर्गति में जाएगा, बापू! आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, (अबुद्धिपूर्वक परिणामों को प्रत्यक्ष ज्ञानी जानता है और उनके अविनाभावी चिह्नों से वे अनुमान से भी ज्ञात होते हैं।) उसके साथ में-पूर्व के साथ में मिलाया। दूसरे जानते हैं, ऐसा आया था न! भाई! मन द्वारा होते हैं, वे अपने को ज्ञात होते हैं और पर के अवलम्बन द्वारा होते हैं, दूसरे भी अनुमान से उन्हें जानते हैं, ऐसा आया था। अब इसमें दूसरे प्रकार से (कहते हैं)। जो (अबुद्धिपूर्वक परिणामों को प्रत्यक्ष ज्ञानी जानता है..) स्वयं नहीं जानता, परन्तु ज्ञानी जानते हैं। (उनके अविनाभावी चिह्नों से वे अनुमान से..) दूसरे भी जानते हैं। अनुमान से (जानते हैं) अभी केवलज्ञान हुआ नहीं, पूर्ण (हुआ) नहीं और राग है। आहाहा!

श्रीमद् में एक आता है। सौभागभाई! सौभागभाई न? सौभागभाई! सौभागभाई मरते नहीं, अन्त में? साथ में कोई था, साथ में कोई था, उसे पलंग में सोते-सोते कहे, मुझे केवलज्ञान होगा तो मैं तुझे कहूँगा। मूल स्थूल बातें। ऐ... परन्तु अभी पलंग में सो रहा है... सौभागभाई न? और वह साथ में था वह? डूंगरसी, डूंगरसी! ऐसी स्थिति! केवलज्ञान किसे कहना? बापू! आहाहा! अरे! यह पलंग होवे नहीं, वस्त्र होवे नहीं। और केवलज्ञान होगा तो मैं तुझे कहूँगा। ऐसी बात बाहर आयी है। आहाहा! ऐसी बात बाहर आयी है, अब सच्ची-झूठी कितनी है (कौन जाने)? यहाँ कान में आयी है। आहाहा! कहीं लिखावट में भी है, कहीं लिखावट है। आहाहा! अरे... बापू! अभी मुनिपना किसे कहना? भाई!

आहाहा! जिन्हें तीन कषाय का नाश (हुआ है), प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द का वेदन (प्रगट हुआ है)। और जिनकी दशा नग्न, वस्त्र का टुकड़ा भी न हो, भाई! आहाहा! उन्हें स्त्री, पुत्र, मकान तो कहाँ थे? वह मुनिदशा बापू! वह कोई अलौकिक है! जैनदर्शन की मुनिदशा! आहाहा! जिसे अन्तर स्वसंवेदन, आनन्द का प्रचुर वेदन (हो), अतीन्द्रिय आनन्द का उफान.. उफान आवे! अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर उत्साह, उफान आवे अन्दर से!!

आहाहा! उसे जहाँ नग्नदशा हो, उसे ऐसा होता है। वस्त्रवाला हो, उसे ऐसी दशा नहीं होती। आहाहा! तो फिर पलंग में सोते हुए केवलज्ञान होगा ?

मुमुक्षु : मरुदेवी माता को हाथी के हौदे केवलज्ञान हुआ, ऐसा तो कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथी के हौदे केवलज्ञान सब मिथ्या बात है। यह फिर श्वेताम्बर कहते हैं। मरुदेवी हाथी के हौदे दर्शन करने जा रही थी। वहाँ ऊपर केवल (ज्ञान) हो गया, ऊपर मोक्ष हो गया। आहाहा! आहाहा! बापू! ऐसा नहीं चलता, भाई! स्त्री का शरीर हो, उसे तो पाँचवें गुणस्थान से ऊपर नहीं आती, मुनिपना नहीं आता, भाई! यह तो पदार्थ की व्यवस्था ऐसी है। भगवान ने की नहीं है। जैसी है, वैसी कही है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं (अबुद्धिपूर्वक परिणामों को प्रत्यक्ष ज्ञानी जानता है..) अपने को जानने में नहीं आते, ऐसा कहते हैं। (उनके अविनाभावी चिह्नों से वे अनुमान से भी ज्ञात होते हैं।) दूसरे को भी ज्ञात होते हैं। सूक्ष्म है (इसलिए) अपने को भले जानने में न आवे। उन्हें यहाँ मोह के उदय से होनेवाले अबुद्धिपूर्वक कहने में आया है और मन द्वारा बुद्धिपूर्वक रागादि हों, उन्हें स्वयं भी जान सके, उनका अवलम्बन बाह्य विषयों का होता है और उन्हें जानते हुए दूसरे को भी अनुमान से ज्ञात हो सकते हैं, दूसरे भी अनुमान से उन्हें जानते हैं, उसे बुद्धिपूर्वक राग कहते हैं और यह अबुद्धिपूर्वक राग स्वयं को ज्ञात नहीं होता और दूसरे को भी ज्ञात नहीं होता। प्रत्यक्ष केवली जाने और दूसरे अनुमान से जाने, उसे अबुद्धिपूर्वक कहते हैं।

मुमुक्षु : सातवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक अबुद्धिपूर्वक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर अबुद्धिपूर्वक है। वह यहाँ बात नहीं है, यह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो निचली भूमिका में बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक की बात है, वह बात यहाँ नहीं है। वह तो सातवें के बाद अबुद्धिपूर्वक है, वह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो निचली भूमिका में भी जो रुचिपूर्वक हो, स्वयं को ज्ञात हो। ज्ञानी को रुचिपूर्वक नहीं होता परन्तु स्वयं को ज्ञात होता है और दूसरे भी अनुमान से जान सकते हैं और उसका अवलम्बन परसन्मुख जाता है। (ऐसे) राग को बुद्धिपूर्वक कहा जाता है और जिस राग को सूक्ष्मरूप से मन द्वारा नहीं और मन द्वारा स्थूलपना नहीं दिखता, इसलिए उसे मोह के उदय से हुआ (कहने में आया है)। प्रत्यक्ष केवली जाने और दूसरे अनुमान से भी जानते हैं। है न ? (अनुमान से

भी ज्ञात होते हैं।) उसे यहाँ अबुद्धिपूर्वक कहते हैं। वह (सातवें से दसवें गुणस्थान के) अबुद्धिपूर्वक की बात यहाँ अभी नहीं है। आहाहा!

पहले इसमें आया था। बुद्धिपूर्वक, नहीं? पहले आया था, देखो! रागादिपरिणाम इच्छासहित होते हैं, सो बुद्धिपूर्वक हैं... यह (बात), यहाँ पहले आयी थी। और जो रागादिपरिणाम इच्छारहित – परनिमित्त की बलवत्ता से होते हैं, सो अबुद्धिपूर्वक हैं। ऐसा आया था। वह अलग, यह अलग, वह अलग। आहाहा! धीमे-धीमे समझने की बात है, बापू! आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है, सूक्ष्म मार्ग है। आहाहा! भगवान आत्मा ही सूक्ष्म है न! आहाहा!

इसलिए ग्रन्थकार की अपेक्षा से रागादि परिणाम बुद्धिपूर्वक हों और अबुद्धिपूर्वक हों, इतनी बात यहाँ ली। और टीकाकार बात डालते हुए (कहते हैं), बुद्धिपूर्वक अर्थात् इसके ख्याल में आवे, मन का जुड़ान हो, दूसरे भी जान सकें, उसे बुद्धिपूर्वक कहते हैं और यहाँ मन में जुड़ान नहीं, ख्याल में आया (कि) जुड़ान नहीं, इसलिए मोह के उदय से हुआ, स्वयं को भी ज्ञात नहीं होता, प्रत्यक्ष केवली जान सकते हैं (ऐसा कहा)।

कलश-११७

अब शिष्य की आशंका का श्लोक कहते हैं:-

(अनुष्टुप्)

सर्वस्या-मेव जीवन्त्यां द्रव्य-प्रत्यय-सन्ततौ ।

कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥११७॥

श्लोकार्थः : '[सर्वस्याम् एव द्रव्यप्रत्ययसंततौ जीवन्त्यां] ज्ञानी के समस्त द्रव्यास्रव की संतति विद्यमान होने पर भी [कुतः] यह क्यों कहा है कि [ज्ञानी] ज्ञानी [नित्यम् एव] सदा ही [निरास्रवः] निरास्रव है' ? - [इति चेत् मतिः] यदि तेरी यह मति (आशंका) है तो अब उसका उत्तर कहा जाता है ॥११७॥

श्लोक - ११७ पर प्रवचन

अब शिष्य की आशंका का श्लोक कहते हैं:- ११७

सर्वस्या-मेव जीवन्त्यां द्रव्य-प्रत्यय-सन्ततौ ।

कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥११७॥

आहाहा! क्या कहते हैं। 'सर्वस्याम् एव द्रव्यप्रत्ययसंततौ जीवन्त्यां' ज्ञानी के समस्त द्रव्यास्रव की संतति विद्यमान होने पर भी.. आहाहा! शंकाकार पूछता है। आशंका, हों! आशंका है, हों! शंका नहीं। तुम कहते हो, वह मिथ्या है - ऐसा नहीं, परन्तु मुझे समझ में नहीं आता। तुम यह क्या कहते हो? धर्मी को समस्त द्रव्यास्रव की संतति विद्यमान है। है न? 'जीवन्त्यां' विद्यमान है। 'जीवन्त्यां' अर्थात् विद्यमान है। समकिती-ज्ञानी को भी अभी आठ कर्म हैं, आयुष्यसहित है, वे विद्यमान आठों कर्म हैं। जीवित अर्थात् विद्यमान है और तुम कहते हो कि उसे बन्धन नहीं है और आस्रव नहीं है। यह क्या कहते हो? आहाहा! ऐसी बातें, बापू! बहुत सूक्ष्म।

'सर्वस्याम् एव द्रव्यप्रत्ययसंततौ जीवन्त्यां' धर्मी जीव—क्षायिक समकिती हो तो भी उसे समस्त द्रव्यास्रव की संतति.. परम्परा अन्दर विद्यमान है। ऐसा होने पर भी ज्ञानी.. 'नित्यम् एव' सदा ही.. आहाहा! सदा ही निरास्रव है? उसे अन्दर आठ कर्म विद्यमान विराजते हैं। आहाहा! नये (कर्म) बँधते हैं, राग होता है, पूर्व के कर्म हैं, नये भी आते हैं - ऐसा सब होने पर भी तुम, प्रभु! आहाहा! ज्ञानी सदा ही निरास्रव है? - ऐसा किस कारण से कहा 'इति चेत् मतिः' यदि तेरी यह मति है.. होवे, इस प्रकार तुझे समझने के लिए आशंका होवे, अर्थात् (आशंका) है तो अब उसका उत्तर कहा जाता है।

गाथा-१७३-१७६

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया अत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओ-गप्पाओगं बंधंते कम्म-भावेण ॥१७३॥
होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठ-विहा भूदा णाणावरणादि-भावेहिं ॥१७४॥
संति दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेह पुरिसस्स ।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ॥१७५॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो ।
आसव-भावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥१७६॥
सर्वे पूर्व-निबद्धास्तु प्रत्ययाः सन्ति सम्यग्दृष्टेः ।
उपयोग-प्रायोग्यं बध्नन्ति कर्म-भावेन ॥१७३॥
भूत्वा निरुपभोग्यानि तथा बध्नाति यथा भवन्त्युपभोग्यानि ।
सप्ताष्ट-विधानि भूतानि ज्ञानावरणादि-भावैः ॥१७४॥
सन्ति तु निरुपभोग्यानि बाला स्त्री यथेह पुरुषस्य ।
बध्नाति तानि उपभोग्यानि तरुणी स्त्री यथा नरस्य ॥१७५॥
एतेन कारणेन तु सम्यग्दृष्टि-रबन्धको भणितः ।
आस्रव-भावाभावे न प्रत्यया बन्धका भणिताः ॥१७६॥

यतः सदवस्थायां तदात्वपरिणीतबालस्त्रीवत् पूर्वमनुपभोग्यत्वेऽपि विपाकावस्थायां प्राप्त-
यौवनपूर्वपरिणीतस्त्रीवत् उपभोग्यत्वात् उपयोगप्रायोग्यं पुद्गलकर्मद्रव्यप्रत्ययाः सन्तोऽपि

कर्मादयकार्यजीवभावसद्भावादेव बध्नन्ति, ततो ज्ञानिनो यदि द्रव्यप्रत्ययाः पूर्वबद्धाः सन्ति, सन्तु, तथापि स तु निरास्रव एव, कर्मादयकार्यस्य रागद्वेषमोहरूपस्यास्रव-भावस्याभावे द्रव्यप्रत्ययानामबन्धहेतुत्वात् ॥१७३-१७६॥

अब, पूर्वोक्त आशंका के समाधानार्थ गाथा कहते हैं:-

जो सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते सदृष्टि के।
 उपयोग के प्रायोग्य बंधन, कर्मभावों से करे ॥१७३॥
 अनभोग्य रह उपभोग्य जिस विध होय उस विध बाँधते।
 ज्ञानावरण इत्यादि कर्म जु सप्त-अष्ट प्रकार के ॥१७४॥
 सत्ता विषै वे निरुपभोग्य हि, बालिका ज्यों पुरुष को।
 उपभोग्य बनते वे हि बाँधें, यौवना ज्यों पुरुष को ॥१७५॥
 इस हेतु से सम्यक्त्वसंयुत, जीव अनबंधक कहे।
 आस्रवभावअभाव में प्रत्यय नहीं बंधक कहे ॥१७६॥

गाथार्थ : [सम्यग्दृष्टेः] सम्यग्दृष्टि के [सर्वे] समस्त [पूर्वनिबद्धाः तु] पूर्वबद्ध [प्रत्ययाः] प्रत्यय (द्रव्यास्रव) [सन्ति] सत्तारूप में विद्यमान हैं, वे [उपयोगप्रायोग्यं] उपयोग के प्रयोगानुसार, [कर्मभावेन] कर्मभाव के द्वारा (-रागादि के द्वारा) [बध्नन्ति] नवीन बन्ध करते हैं। वे प्रत्यय, [निरुपभोग्यानि] निरुपभोग्य [भूत्वा] होकर फिर [यथा] जैसे [उपभोग्यानि] उपभोग्य [भवन्ति] होते हैं [तथा] उसी प्रकार, [ज्ञानावरणादिभावैः] ज्ञानावरणादि भाव से [सप्ताष्टविधानि भूतानि] सात-आठ प्रकार से होनेवाले कर्मों को [बध्नाति] बाँधते हैं [सन्ति तु] सत्ता-अवस्था में वे [निरुपभोग्यानि] निरुपभोग्य हैं अर्थात् भोगनेयोग्य नहीं हैं- [यथा] जैसे [इह] इस जगत में [बाला स्त्री] बाल स्त्री [पुरुषस्य] पुरुष के लिये निरुपभोग्य है। [यथा] जैसे [तरुणी स्त्री] तरुण स्त्री युवती [नरस्य] पुरुष को [बध्नाति] बाँध लेती है, उसी प्रकार [तानि] वे [उपभोग्यानि] उपभोग्य अर्थात् भोगने योग्य होने पर बन्धन करते हैं। [एतेन तु कारणेन] इस कारण से [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि को [अबंधकः] अबन्धक [भणितः] कहा है, क्योंकि [आस्रवभावाभावे] आस्रवभाव के अभाव में [प्रत्ययाः] प्रत्ययों को [बन्धकाः] (कर्मों का) बन्धक [न भणिताः] नहीं कहा है।

टीका : जैसे पहले तो तत्काल ही परिणीत बाल स्त्री अनुपभोग्य है किन्तु यौवन को प्राप्त वह पहले की परिणीत स्त्री यौवनावस्था में उपभोग्य होती है और जिस प्रकार उपभोग्य हो, तदनुसार वह पुरुष के रागभाव के कारण ही पुरुष को बन्धन करती है— वश में करती है, इसी प्रकार जो पहले तो सत्तावस्था में अनुपभोग्य हैं किन्तु विपाक- अवस्था में उपभोगयोग्य होते हैं, ऐसे पुद्गलकर्मरूप द्रव्यप्रत्यय होने पर भी वे जिस प्रकार उपभोग्य हों, तदनुसार (अर्थात् उपयोग के प्रयोगानुसार), कर्मोदय के कार्यरूप जीवभाव के सद्भाव के कारण ही, बन्धन करते हैं। इसलिए ज्ञानी के यदि पूर्वबद्ध द्रव्यप्रत्यय विद्यमान हैं, तो भले रहें; तथापि वह (ज्ञानी) तो निरास्रव ही है, क्योंकि कर्मोदय का कार्य जो रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव है, उसके अभाव में द्रव्यप्रत्यय बन्ध के कारण नहीं हैं। (जैसे यदि पुरुष को रागभाव हो तो ही यौवनावस्था को प्राप्त स्त्री उसे वश कर सकती है, इसी प्रकार जीव के आस्रवभाव हो, तब ही उदय प्राप्त द्रव्य प्रत्यय नवीन बन्ध कर सकते हैं।)

भावार्थ : द्रव्यास्रवों के उदय और जीव के रागद्वेषमोहभाव का निमित्त- नैमित्तिकभाव है। द्रव्यास्रवों के उदय में युक्त हुवे बिना जीव के भावास्रव नहीं हो सकता और इसलिए बन्ध भी नहीं हो सकता। द्रव्यास्रवों का उदय होने पर जीव जैसे उसमें युक्त हो अर्थात् जिस प्रकार उसे भावास्रव हो; उसी प्रकार द्रव्यास्रव नवीन बन्ध के कारण होते हैं। यदि जीव भावास्रव न करे तो उसके नवीन बन्ध नहीं होता।

सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय न होने से उसे उस प्रकार के भावास्रव तो होते ही नहीं और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय सम्बन्धी बन्ध भी नहीं होता। (क्षायिक सम्यक्दृष्टि के सत्ता में से मिथ्यात्व का क्षय होते समय ही अनन्तानुबन्धी कषाय का तथा तत्सम्बन्धी अविरति और योगभाव का भी क्षय हो गया होता है, इसलिए उसे उस प्रकार का बन्ध नहीं होता; औपशमिक सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय मात्र उपशम में—सत्ता में—ही होने से सत्ता में रहा हुआ द्रव्य उदय में आये बिना उस प्रकार के बन्ध का कारण नहीं होता; और क्षायोपशमिक सम्यक्दृष्टि को भी सम्यक्त्वमोहनीय के अतिरिक्त छह प्रकृतियाँ विपाक में (उदय में) नहीं आतीं, इसलिए उस प्रकार का बन्ध नहीं होता।)

अविरतसम्यक्दृष्टि इत्यादि के जो चारित्रमोह का उदय विद्यमान है, उसमें जिस प्रकार जीव युक्त होता है; उसी प्रकार उसे नवीन बन्ध होता है; इसलिए गुणस्थानों के

वर्णन में अविरत-सम्यक्दृष्टि आदि गुणस्थानों में अमुक अमुक प्रकृतियों का बन्ध कहा है। किन्तु यह बन्ध अल्प है, इसलिए उसे सामान्य संसार की अपेक्षा से बन्ध में नहीं गिना जाता। सम्यक्दृष्टि चारित्रमोह के उदय में स्वामित्वभाव से युक्त नहीं होता, वह मात्र अस्थिरतारूप से युक्त होता है; और अस्थिरतारूप युक्तता निश्चयदृष्टि में युक्तता ही नहीं है। इसलिए सम्यक्दृष्टि के रागद्वेषमोह का अभाव कहा गया है। जब तक जीव कर्म का स्वामित्व रखकर कर्मोदय में परिणमित होता है, तब तक ही वह कर्म का कर्ता कहलाता है; उदय का ज्ञातादृष्टा होकर पर के निमित्त से मात्र अस्थिरतारूप परिणमित होता है, तब कर्ता नहीं किन्तु ज्ञाता ही है। इस अपेक्षा से सम्यक्दृष्टि होने के बाद चारित्रमोह के उदयरूप परिणमित होते हुए भी उसे ज्ञानी और अबन्धक कहा गया है। जब तक मिथ्यात्व का उदय है और उसमें युक्त होकर जीव रागद्वेषमोहभाव से परिणमित होता है, तब तक ही उसे अज्ञानी और बन्धक कहा जाता है। इस प्रकार ज्ञानी-अज्ञानी और बन्ध-अबन्ध का यह भेद जानना। और शुद्ध स्वरूप में लीन रहने के अभ्यास द्वारा केवलज्ञान प्रगट होने से जब जीव साक्षात् सम्पूर्ण ज्ञानी होता है, तब वह सर्वथा निरास्रव हो जाता है, यह पहले कहा जा चुका है।

गाथा - १७३ से १७६ पर प्रवचन

गाथा । चार है न गाथा ।

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया अत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।

उवओ-गप्पाओगं बंधंते कम्म-भावेण ॥१७३॥

होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।

सत्तट्ठ-विहा भूदा णाणावरणादि-भावेहिं ॥१७४॥

संति दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेह पुरिसस्स ।

बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ॥१७५॥

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो ।

आसव-भावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥१७६॥

जो सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते सदृष्टि के।
 उपयोग के प्रायोग्य बंधन, कर्मभावों से करे॥१७३॥
 अनभोग्य रह उपभोग्य जिस विध होय उस विध बाँधते।
 ज्ञानावरण इत्यादि कर्म जु सप्त-अष्ट प्रकार के॥१७४॥
 सत्ता विषैं वे निरुपभोग्य हि, बालिका ज्यों पुरुष को।
 उपभोग्य बनते वे हि बाँधें, यौवना ज्यों पुरुष को॥१७५॥
 इस हेतु से सम्यक्त्वसंयुत, जीव अनबंधक कहे।
 आसरवभावअभाव में प्रत्यय नहीं बंधक कहे॥१७६॥

आहाहा! टीका : जैसे पहले तो तत्काल ही परिणीत बाल स्त्री अनुपभोग्य है.. विवाह किया हो परन्तु लड़की दस वर्ष की या ग्यारह वर्ष की या आठ वर्ष की हो, वह अनभोग्य है। किन्तु यौवन को प्राप्त वह.. वह जब जवान हो, वह पहले की परिणीत स्त्री यौवनावस्था में उपभोग्य होती है.. दृष्टान्त (कहते हैं)। और जिस प्रकार उपभोग्य हो.. जिस प्रकार वर्तमान में उपभोग्य हो, तदनुसार वह पुरुष के रागभाव के कारण ही पुरुष को बन्धन करती है.. आहाहा! वश में करती है,.. यह दृष्टान्त।

इसी प्रकार जो पहले तो सत्तावस्था में अनुपभोग्य हैं.. धर्मी को सत्ता में पड़े हुए कर्म, वे कहीं भोग्य नहीं हैं, पड़े हैं। आहाहा! सत्तावस्था में अनुपभोग्य हैं किन्तु विपाक-अवस्था में उपभोग्योग्य होते हैं.. जब उस कर्म का उदय-विपाक आवे, तब वह उपभोग्य होता है। आहाहा! ऐसे पुद्गलकर्मरूप द्रव्यप्रत्यय.. जड़कर्म का उदय होने पर भी.. आहाहा! वे उपयोग के प्रयोगानुसार.. वे जिस प्रमाण वर्तमान पुरुषार्थ से जुड़े तदनुसार। आहाहा! उपयोग के प्रयोगानुसार.. वर्तमान उपयोगानुसार। कर्म सत्ता (में) पड़ा है, वह कुछ नहीं। उसका उदय आवे, तब भी वर्तमान पुरुषार्थ से जितना जुड़े, उतना उसे बन्धन है। समझ में आया? आहाहा!

कर्मोदय के कार्यरूप जीवभाव के सद्भाव के कारण ही,.. कर्म के उदय के कार्य में यदि जीवभाव का सद्भाव हो, साथ में जुड़ान हो तो बन्धन करते हैं। यह क्या कहा? ज्ञानी को सत्ता में कर्म पड़े थे, वे तो कहीं भोग्य नहीं हैं। उदय में आवे, तब वर्तमान

में जितना जिस प्रकार का अपना उपयोग जुड़े, तत्प्रमाण बन्धन होता है। अब, ज्ञानी का उपयोग सम्यग्दर्शनसहित का है। आहाहा! आहाहा! है ?

कर्मोदय के कार्यरूप जीवभाव.. (अर्थात् कि) विकारीभाव। उसके सद्भाव के कारण ही बन्धन करे। इसलिए ज्ञानी के यदि पूर्वबद्ध द्रव्यप्रत्यय विद्यमान हैं,.. धर्मी को पूर्व में बँधे हुए मिथ्यात्व से बाँधे थे, वे कर्म पड़े हैं। तो भले रहें; तथापि वह (ज्ञानी) तो निरास्रव ही है,.. पूर्व कर्म की अपेक्षा से भी, वे पड़े हुए हैं, इस अपेक्षा से निरास्रव है। क्योंकि कर्मोदय का कार्य जो रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव है, उसके अभाव में द्रव्यप्रत्यय बन्ध के कारण नहीं हैं। उस कर्म के उदय का कार्य वर्तमान राग-द्वेष-मोह होवे तो आस्रव (होता है) परन्तु वह आस्रवभाव है, उसके अभाव में द्रव्यप्रत्यय बन्ध के कारण नहीं हैं। धर्मी को वह (कर्म का) उदय आवे, परन्तु उसे राग-द्वेष होता ही नहीं, कहते हैं। उसमें उसका जुड़ान होता ही नहीं। आहाहा! वह तो समकित्ती है, उसके ज्ञान का जुड़ान तो आत्मा के साथ है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्यप्रत्यय बन्ध के कारण नहीं हैं। जड़ पड़े हुए कर्म कोई बन्ध के कारण नहीं हैं। वर्तमान में उदय आवे, तब जितना स्वयं उस ओर में जुड़े तो उसे भाव होता है।

(जैसे यदि पुरुष को रागभाव हो तो ही यौवनावस्था को प्राप्त स्त्री उसे वश कर सकती है; इसी प्रकार जीव के आस्रवभाव हो, तब ही उदय प्राप्त द्रव्य प्रत्यय नवीन बन्ध कर सकते हैं।) नये भाव करे, पुराने कर्म पड़े हों, नये भाव करे तो बन्धन का कारण होता है। पुराने कर्म पड़े हैं, इसलिए उसे बन्धन का कारण होता है— ऐसा नहीं है। आहाहा! वर्तमान में इसकी दशा जड़कर्म के साथ में उदय आवे, तब जितने प्रमाण में वर्तमान में जुड़े, जुड़ान स्वभावसन्मुख तो है ही, (तथापि) ऐसे (उदय में) जुड़े उतने प्रमाण में (बन्धन) होता है। यह तो समकित्ती का जुड़ान तो आत्मा के साथ है। समझ में आया? थोड़ा जुड़ान है, तथापि उसे यहाँ आस्रव और बन्धरहित कहा गया है। आहाहा! यह मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की अपेक्षा से है, हों! यह स्पष्टीकरण करेंगे। आहाहा!

भावार्थ : द्रव्यास्रवों के उदय और जीव के रागद्वेषमोहभाव का निमित्त-
नैमित्तिकभाव है। यह क्या कहा? पुराने जड़कर्म हैं निमित्त और नये वर्तमान राग-द्वेष होते हैं, वे नैमित्तिक हैं। यह राग-द्वेष करे तो उन्हें निमित्त कहने में आता है। द्रव्यास्रवों

के उदय में युक्त हुवे बिना जीव के भावास्रव नहीं हो सकता.. अकेले निमित्त बिना स्वभाव में अकेला आस्रवभाव नहीं हो सकता। उतना यहाँ आस्रव सिद्ध करना है न! जीव के भावास्रव नहीं हो सकता और इसलिए बन्ध भी नहीं हो सकता। द्रव्यास्रवों का उदय होने पर जीव जैसे उसमें युक्त हो अर्थात् जिस प्रकार उसे भावास्रव हो, उसी प्रकार द्रव्यास्रव नवीन बन्ध के कारण होते हैं। यदि जीव भावास्रव न करे तो उसके नवीन बन्ध नहीं होता। कर्म का उदय आया, इसलिए बन्धन होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अपने जुड़ान में से छूटकर उसमें जितना जुड़ान करे, उतना इसे नया बन्धन होता है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)